International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 27-11-2025; Accepted: 23-01-2026; Published: 09-02-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 91-94

अथर्ववेद में योगांगों का स्वरूप: यम–नियम के विशेष संदर्भ में

पारुल सैनी[1], डॉ बबलू वेदालंकार[2]
[1] शोधछात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविध्यालय हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत
[2] सहायक आचार्य, दर्शनशास्त्र विभाग गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविध्यालय हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत

सारांश
वैदिक साहित्य मानव सभ्यता के नैतिक, आचारिक एवं आध्यात्मिक जीवन के मूल तत्वों का स्रोत है, जिसमें यम–नियम को एक विशेष स्थान प्राप्त है। अथर्ववेद समेत अन्य वेदों में संयम, सत्य, अहिंसा, आंतरिक शुद्धता जैसे जीवनचर्या के अनुशासन की नींव रखी गई है, जो कालक्रम में पातंजलि के योगसूत्र में एक सुव्यवस्थित रूप में विकसित हुई। पातंजलि योग दर्शन में यम एवं नियम को योग साधना की आधारशिला माना गया है, जो न केवल व्यक्तिगत विकास बल्कि सामाजिक समरसता एवं वैश्विक मानवता के सूत्र भी प्रदान करता है।

यम योगदर्शन में अष्टांग योग का प्रथम अंग हैं, जिसका उद्देश्य सामाजिक आचरण का शुद्धिकरण है। यम में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे पाँच नैतिक नियम होते हैं, जो मनुष्य को आदर्श जीवन की ओर प्रेरित करते हैं। नियम, जो योगदर्शन का दूसरा अंग है, आत्म–संयम, आंतरिक शुद्धता और आत्म–विकास का हेतु रखता है। इसके पाँच अंग – शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान, व्यक्तिगत स्तर पर अनुशासन और सकारात्मकता विकसित करते हैं। मुंडकोपनिषद् में यम के रूप में विविध देवताओं, साध्य गणों और नैतिक मूल्यों को माना गया है, वहीं जैन दर्शन में पंचमहाव्रत के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। अथर्ववेद में योग का मुख्य स्वरूप चित्त–वृत्तिनिरोध और ब्रह्म प्राप्ति के लिए आंतरिक एकाग्रता के रूप में प्रस्तुत है, जिसमें आठ प्रकार के योग और ब्राह्मणों के छह कर्मों के माध्यम से ईश्वर प्राप्ति की दिशा दिखाई गई है।

इस प्रकार यम–नियम से लेकर योग के अभ्यास तक की वैदिक परंपरा आध्यात्मिक प्रगति के लिए नैतिक और मानसिक अनुशासन की अनिवार्य प्रणाली प्रदान करती है।

मूल शब्दः यम, नियम, वैदिक स्वरूप, वैदिक अष्टांग योग, अथर्ववेद

प्रस्तावना

वैदिक साहित्य मानव सभ्यता को नैतिकता, आचार और आध्यात्मिक जीवन के सूत्र प्रदान करता है, जिसमें यम–नियम का उल्लेख विशिष्ट स्थान रखता है। अथर्ववेद और अन्य वेदों में जीवनचर्या के अनुशासन, सत्य, संयम, अहिंसा तथा आंतरिक शुद्धता से संबंधित कथनों की नींव मिलती है, जो कालान्तर में पातंजलि के योगसूत्र में सर्वाधिक सुव्यवस्थित रूप में समाहित हुई। पातंजलि योगदर्शन ने यम एवं नियम को योग साधना के प्रथम एवं आधार स्तंभों के रूप में स्थापित किया, जिससे न केवल व्यक्तिगत विकास अपितु सामाजिक समरसता और वैश्विक मानवता के सूत्र प्रकट होते हैं।

आत्म–संयम और अनुशासन में यम और नियम अति महत्वपूर्ण अंग हैं, जों मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति और मानसिक शुद्धता की ओर ले जाते हैं। इसलिए वेद से लेकर योग–सूत्र पर्यन्त योग की परम्परा साधकों के योगमार्ग को प्रकाशित करती रही है। योगांगो में प्रथम दो अंग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इनका परिचय निम्नलिखित है –

1. यम

यम योगदर्शन में अष्टांग योग के प्रथम और अत्यंत महत्वपूर्ण अंग हैं, जिसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के सामाजिक आचरण का परिष्कार व शुद्धिकरण करना है। अष्टांग योग के आठों अंगोंकृ यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—में यम को प्रथम स्थान दिया गया है, क्योंकि यह साधक के नैतिक और सामाजिक जीवन को संतुलित करने के लिए आवश्यक है।

'यम' शब्द की व्युत्पत्ति उपरमे धातु से हुई है, जिसका अर्थ 'उपरम' अर्थात् अभाव, संयम या नियंत्रण होता है।[1] योगदर्शन में 'यम' के अंतर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसी पाँच प्रमुख नैतिक संहिताएँ आती हैं, जो व्यक्ति को समाज में आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं और आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने की आधारभूमि बनाते हैं।

2. नियम

नियम योगदर्शन का दूसरा अंग है, जो आत्म–संयम, आंतरिक शुद्धता और आत्म–विकास को पुष्ट करने में सहायक है। इसके पाँच प्रकार—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर–प्रणिधान—प्रत्येक साधक को व्यक्तिगत स्तर पर शुद्ध, सकारात्मक और अनुशासित जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। नियमों के निरंतर अभ्यास से साधक अपने भीतर सजगता, संयम और संतुलन को विकसित करता है, जिससे उसकी साधना प्रगाढ़ होती है और आत्म–ज्ञान की दिशा में बढ़ता है।[2]

मुंडकोपनिषद् में कहा गया है – परमेश्वर से यम–नियमादि कि उत्पत्ति के विषय में बताया है कि 'विविध देवता, साध्यगण, मनुष्य, पशु–पक्षी, प्राण–अपान, वायु, धान, जौ, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य को 'यम' कहा है।[3] मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि "सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं"। सत्य से ही उन्नति की ओर बढ़ते है, जिससे कामनारहित ऋषिगण उस सत्यस्वरूप ब्रह्मा के ऊत्कराष्ट धाम की और प्रवेश करते है। जैन दर्शन में यम को पंचमहाव्रत कहा गया है जो सम्यक चरित्र, नैतिक मूल्यों पर अधिक जोर देते है।[4] पंचमहाव्रत को अपनाकर मनुष्य मोक्ष प्राप्ति के योग्य हो जाता है कर्मों का आश्रय जीव में बन्द हो जाता है और पुराने कर्मों का क्षय हो जाता है।[5]

योगदर्शन के अनुसार– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह को यम कहा जाता है।[6] यम में से सब प्रकार से सब कालों में समस्त भूतों को पीड़ा न देना 'अहिंसा' है, जो वस्तु जैसी वैसा मन वाणी से समझना सत्य है, अवैधरूप से दूसरों के

पदार्थों कों लेना अस्तेय है, गुप्तेद्रिय उपस्थ का संयम 'ब्रह्मचर्य' है। अर्जन, रक्षण, क्षय हिंसा दोषों के दिखने से विषयों को स्वीकार न करना 'अपरिग्रह' है।[7]

1. अहिंसा

अहिंसा के विषय में अथर्ववेद में कहा गया है की राजा को अपने पराये का पक्षपात को छोड़कर प्रजा की रक्षा करने के लिए दुष्टों को यथोचित दण्ड (हिंसा) देकर राज्य में शांति (अहिंसा) रखनी चाहिए। आगे मंत्र में कहते हैं छानबीन करके प्रकट और अप्रकट प्रतिपक्षियों और अनिष्टचिंतकों को शूरवीर विद्वान महात्मा नाश कर डालें। वह परब्रह्मा सर्वरक्षक, कवच रूप होकर, धर्मात्माओं के रोम–रोम में भर रहा है, वही आत्मबल देकर युद्ध क्षेत्र में सदा उनकी रक्षा करता हैं।[8] इसी तरह कि चर्चा महर्षि पतंजलि करते है की सभी प्राणियों के साथ वैरभाव को छोड़कर प्रीति से वर्त्तना, अहिंसा है। उदाहरण के लिए अगर व्यक्ति को चोरी या अशुभ कर्म करने पर उसके सुधार के लिए उपकार के लिए प्रेम पूर्वक उचित दण्ड दिया जाय तो वह अहिंसा है, हिंसा नहीं। माता पिता या गुरु आदि बालक–बालिकाओ के दोषों से दूर रखने के लिये तथा उनको गुणवान बनाने के लिये स्नेहपूर्वक उनको उचित दण्ड देते हैं तो वह हिंसा नहीं, अहिंसा है।[9]

2. सत्य

अथर्ववेद भाष्य में कहा गया है की सत्यकर्म करने वाला, सत्यज्ञानी, जितेंद्रिय, ईश्वर और विद्वानों से प्रीति करने वाले चतुर मनुष्य इस पृथ्वी पर उन्नति करते हैं। यह नियम भूत और भविष्य के लिये समान हैं।[10] आगे मंत्र में कहा गया है की, परमात्मा की महिमा को जानते हुए मनुष्य को सदैव सत्य ही बोलना चाहिए और उत्तम ज्ञानेंद्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को पास करके आत्मस्वरूप को पहचाने।[11] वेदों की इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं की जो वस्तु जैसी हो उसको वैसी ही वाणी और मन में होना सत्य हैं। जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण रूप इंद्रियों से प्रत्यक्ष किया हो, जैसे तर्क से अनुमान किया हो और आगम से सुना हो, वैसे ही यदि मन और वाणी भी हो तो वह वाणी सत्य कही जाती हैं ।[12]

3. अस्तेय

अथर्ववेद भाष्य में मनुष्य के दुष्ट विचारों से चोरी तथा दुष्ट कर्मों और नरक आदि बुरे फल और शुभ विचारों से सत्य और उत्तम कर्म उनके साथ उत्तम फल शरीर द्वारा प्राप्त होते है। आगे कहा गया है कि मन से भी चोरी नहीं करनी चाहिए।[13] महर्षि पतंजलि ने कहा है की किसी अन्य पुरुष के वस्तु की आज्ञा के बिना ग्रहण करना स्तेय चोरी कहलाती है। उस चोरी का मन, वाणी और शरीर से त्याग करना अस्तेय कहलाता हैं।[14]

4. ब्रह्मचर्य

चतुर्ववेद शतकम– अच्युतानन्द सरस्वती (अथर्ववेद) मे ब्रह्मचर्य के विषय में बताते है कि 'जो राजा इंद्रियों का दमन और वेद विचार रूपी ब्रह्मचर्य वाला हैं, वह प्रजा पालन में बड़ा निपुण होता हैं, ब्रह्मचर्य के कारण आचार्य विद्या वृद्धि के लिए ब्रह्मचारी से प्रेम करता हैं।[15] ब्रह्मचारी के पक्ष में बताया गया है की हम जो तपस्या पूर्वक विद्वानों की सेवा करते हैं, ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और तीर्व वेगवान इंद्रीयों को वश में करते हैं तब ऐसे मोक्षपद में ये प्राण हमें सुख प्रदान करते हैं। अन्यथा ये ही नाना सांसारिक दु:खों का कारण होते हैं।[16] पतंजलि गूढ रूप में ब्रह्मचर्य के विषय में कहते है की वेदों को पढ़ना, ईश्वरोपासना करना तथा वीर्य की रक्षा करना ब्रह्मचर्य हैं। इसका पालन करने से साधक दीर्घायु को प्राप्त करता है और इस प्रकार से रक्षित वीर्य परम सूक्ष्म ब्रह्मविद्या प्राप्ति में ईंधनवत् कार्य करता हैं।[17]

5. अपरिग्रह

जब मनुष्य अपने आत्मिक और शारीरिक दुर्गुणों तथा दुर्लक्षणों को विद्वानों के उपदेश और सत्संग से छोड़ देता हैं, परमेश्वर उसे स्वीकार करके अनेक सामर्थ्य देता हैं और आनंदित करता हैं। आगे मंत्र मे कहते हैं की सभी स्त्री पुरुष मनुष्य स्वभाव से विरुद्ध कुचेष्टाओं को छोड़ कर विद्वानों के सत्संग से सुंदर स्वभाव बनावें और मनुष्य जन्म को सुफल करके आनंद को भोगे।[18] योगदर्शनम् में सत्यपति जी कहते हैं – विषयों में उपार्जन, रक्षण, क्षय, संग, हिंसा दोष देखकर विषयभोग की दृष्टि से उनका संग्रह न करना अपरिग्रह है। इस प्रकार से भी कह सकते हैं कि हानिकारक, अनावश्यक वस्तु और अभिमान आदि हानिकारक, अनावश्यक अशुभ विचारों को त्याग देना अपरिग्रह हैं।[19]

6. शौच

अथर्ववेद में मल से विशुद्धि हुआ हिरण्य शुद्ध हो जाता है तथा उसके पश्चात जिस मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ भी शुद्ध हो जाती है इस अवस्था में वे दोनों पवित्र शरीर और पवित्र चित्तवृतियाँ अमृत नामों को धारण करते है, उन नामों का जप तथा नामर्थों का ध्यान करते हैं। हमारे उस व्यक्ति के लिये प्रजायें वस्त्र आदि प्रदान करें।[20] शौच अर्थात पवित्रता दो प्रकार की बतायी गयी है, मिट्टी जल आदि के संयोग से उत्पन्न होने वाली तथा पवित्र पदार्थों के खाने से बाह्य शुद्धि होती है। चित्त के अविद्यदि दोषों से उत्पन्न राग–द्वेष आदि मलों को यथार्थ ज्ञान और क्रिया योग से धोना अभ्यंतर शुद्धि होती हैं।[21]

7. संतोष

अथर्ववेद में संतोष के विषय में स्पष्ट रूप से नहीं मिला परन्तु आनंद के सन्दर्भ में मिलता हैं कि ब्रह्मवादी व्यक्ति आचार्य के उपदेश से वेदविद्या को मुख्य मानकर उसकी उत्तमता को खोजकर ऐसा आनंद पाते हैं, जैसे किसान अपने स्वामी की आज्ञा से विधिपूर्वक खेत में बीज बोकर अन्न प्राप्त करके प्रसन्न होते हैं।[22] शरीर से पूर्ण धर्म के अनुकूल पुरुषार्थ करने के पश्चात जो भी लाभ–हानि में हर्ष या शोक नहीं करना और अधिक की प्राप्ति की इच्छा न करना संतोष कहलाता है। अपने पास विद्यमान उपलब्ध साधनों से अधिक साधनों को प्राप्त करने की इच्छा का अभाव होना संतोष हैं।[23]

8. तप

अथर्ववेद में मनुष्य तप अर्थात द्वनदों का सहन और पूर्ण ब्रह्मचर्य के सेवन से वेदविद्या प्राप्त करके यशस्वी तथा तीर्वबुद्धि होकर संसार का उपकार करें।[24] अगले मंत्र में कहते है कि मनुष्य द्वनदों को सहन और ब्रह्मचर्य से वेदों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन करके संसार में कीर्तिमान होता हैं।[25] धर्म का आचरण करते हुए सुख–दु:ख, लाभ–हानि, मान–अपमान, भूख–प्यास आदि को शांत चित्त से सहन करना, तप है। जिन उत्तम कार्यों के करने से स्वयं का और अन्यों का दुख दूर होता है और सुख की प्राप्ति होती है उनको करते रहना और नहीं छोड़ना, धर्म का आचरण है।[26]

9. स्वाध्याय

अथर्ववेद में 'यह बुद्धि धारणशक्ति है जो गुरुमुख से सुना और स्वयं पढ़ा उसे चित्त में स्थिर रखना। प्रातःकाल स्वाध्याय का श्रेष्ट समय है, क्योंकि यह सात्विक काल है। ग्रहथ जीवन के लिए गायों और अश्वो का भी उपार्जन करना आवश्यक है।[27] वेद के अनुकूल मोक्ष के स्वरूप को तथा उसके साधन, बाधकों को बताने वाले ग्रंथों को पढ़ना–पढ़ाना और ईश्वर के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले मंत्रों एवं प्रणव आदि का अर्थ सहित जप करना, स्वाध्याय है।[28]

10. ईश्वर प्राणिधान

अथर्ववेद में जिस परमेश्वर ने हमें सुख प्रदान किया हैं, उसके गुणों को मनुष्य यथावत् जानकर उसकी सदा उपासना करे। मनुष्य ईश्वर में आत्म–समर्पण करके धन–धान्य आदि को बढ़ाकर आनंद को भोगते है, वह परमात्मा अपने अनंत भण्डार से अपने सेवकों की कामनाएँ पूरी करता है। परमात्मा की अनंत शक्तियाँ दुष्टों और दोषों को इस प्रकार करती हैं, जैसे बड़े सेनापति के हथियार और जो उद्योगी उपासक उसकी आज्ञा मानते हैं, उनको वह मेह के समान अवश्य अत्यंत सुख देता हैं।[29] वैदिक परंपरा को आगे बढ़ाते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं की उस परमगुरु परमात्मा, में अपने सभी कर्मों को अर्पण करना अर्थात समर्पण भाव से अपने सभी कार्य करना ईश्वर–प्रणिधान कहा जाता है।[30]

अथर्ववेद में योग का स्वरूप

अथर्ववेद में योग का स्वरूप मुख्यतः चित्त–वृत्तियों के निरोध और आंतरिक एकाग्रता के रूप में प्रस्तुत है। इसे बाह्य कर्मों या साधनाओं से अलग, मन के स्थिर और शांत होने की प्रक्रिया माना गया है। अथर्ववेद में योग–साधना, चित्तवृत्तिनिरोध और ब्रह्म की प्राप्ति जैसे विषयों पर बल दिया गया है, जहाँ योग का अर्थ "स्थितिप्राप्ति" या "चित्त की स्थिरता" है। अथर्ववेद को ऐसा वेद कहा गया है जिसमें आत्मा को अपने भीतर देखना और आत्मा के ज्ञान का उपदेश है। शतपथ ब्राह्मण में प्राण को "अथर्वा" माना गया है, जिससे यह भी प्रकट होता है कि प्राणशक्ति को जागृत करने और प्राणायाम से ब्रह्म की प्राप्ति पर भी ध्यान है।

अथर्ववेद में मिलता है कि आठ प्रकार के योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) और ब्राह्मणों के छः कर्म (अध्यापन, अध्ययन, यज्ञ, याजन, दान, प्रतिग्रह) के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त किया। उसी कर्म से वे आपके शरीर के दोषों, पापों को विपरीत दिशा देकर नष्ट करते हैं।[31] अर्थात, इस मंत्र में योग के आठ अंगों की महत्ता को दर्शाते हुए कहा गया है कि योग साधना और ब्राह्मण कर्म दोनों से शुद्धि और ईश्वर प्राप्ति संभव है, जो शरीर के दोषों को दूर करती है।

अथर्ववेद में इंद्र के विभिन्न प्राकृतिक गुणों का उल्लेख है— ओज (पराक्रम), सह (पुरुषार्थ), बल, वीर्य (वीरता) और नृम्ण (शूरता)। कहा गया है कि जो मनुष्य ब्रह्मयोग (आध्यात्मिक योग) के द्वारा परमात्मा के गुणों में चित्त लगाता है, वह इंद्र के इन्हीं गुणों से युक्त हो जाता है और अनेक प्रकार से ऐश्वर्यवान् बनता है।[32] अर्थात, ब्रह्मयोग से मनुष्य न केवल शारीरिक बलवान होता है, बल्कि आत्मिक और आध्यात्मिक शक्ति भी प्राप्त करता है।

संक्षेप में, अथर्ववेद में योग का स्वरूप आंतरिक नियंत्रण, चित्त की एकाग्रता, प्राणशक्ति का जागरण तथा ब्रह्म–साधना के लिए एक आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में वर्णित है। यह योग केवल भौतिक कर्मों का योग नहीं, बल्कि मन एवं आत्मा की स्थिरता और ज्ञान की प्राप्ति का योग है।

निष्कर्ष

वैदिक साहित्य मानव सभ्यता को नैतिकता, आचार और आध्यात्मिक जीवन के मूल सूत्र प्रदान करता है। विशेष रूप से यम–नियम का उल्लेख ऐसे एक स्थायी नैतिक आधार के रूप में होता है जो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की रक्षा करता है। अथर्ववेद जैसे प्राचीन ग्रंथों में यम–नियम के तत्वों की आधारशिला पाई जाती है, जो पातंजलि योगसूत्र में एक सुव्यवस्थित एवं कठोर अनुशासनात्मक प्रणाली के रूप में परिपक्व हुई। अतः निष्कर्षतः, यह कहा जा सकता है कि वैदिक परंपरा से लेकर पतंजलि के योग दर्शन तक, यम–नियम के माध्यम से नैतिकता, सामाजिक समरसता और आध्यात्मिक उन्नति की नींव रखी गई है। योग का वास्तविक अर्थ केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि आंतरिक शांति, संयम और ब्रह्म के साथ आत्मीय संबंध स्थापित करना है, जो मनुष्य जीवन को पूर्णता की ओर ले जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. भारतीय दर्शन परिभाषा शब्दकोश
2. स० वा०,१.२३६
3. तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि। प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च।। – मुण्डकोपनिषद (2\1\7)
4. योगदर्शनम् स्वामी सत्यप्रति परिव्राजक
5. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा.
6. अहिंसा सत्यस्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमाः। – यों० सू० – 2/30
7. योगदर्शनम् स्वामी सत्यप्रति परिव्राजक
8. त्रिवेदी, प० पण्डित क्षेमकरणदास (भाष्यकार) (2017) अथर्ववेद, विजयकुमार गोविंदराम हासानन्द, का०–1, सू०–20, मंत्र० – 3–4, पृष्ट – 102
9. परिव्राजक, सत्यपति, (2023). योगदर्शनम, दर्शनयोग धर्मार्थ ट्रस्ट, पृष्ट – 175
10. सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ।। 12.1.1 अथर्ववेद भाष्य (पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी)
11. इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम। सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ।। 4.9.7 अथर्ववेद भाष्य (पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी)
12. ब्रह्मलीनमुनि, स्वामी, (2074). पतंजलयोगदर्शनम् ,चौखंबा प्रकाशन, पृष्ट–276
13. स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत्। बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ।। 11.8.20, 14.1.57 अथर्ववेद भाष्य(पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी)
14. आर्य, सतीश, (2016). पातंजल योगदर्शन, वेद योग चौरिटेबल ट्रष्ट, पृष्ट– 379
15. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति। आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।। 11.5.17 चतुर्ववेद शतकम– अच्युतानन्द सरस्वती (अथर्ववेद)
16. देवान्यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम। अक्षान्यद्बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे ।। 7.109.7 अथर्ववेद सहिंता भाषा भाष्य (पंडित जयदेव शर्मा)
17. आर्य, सतीश, (2016). पातंजल योगदर्शन, वेद योग चौरिटेबल ट्रष्ट, पृष्ट –380
18. यत्त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा। सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु ।। 1.18.3–4 अथर्ववेद भाष्य(पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी)
19. परिव्राजक, सत्यपति, (2023). योगदर्शनम्, दर्शनयोग धर्मार्थ ट्रस्ट, पृष्ट – 176
20. विद्यामार्तंड, वी० वि०, (2013). अथर्ववेद–भाष्यम् (आध्यात्मिक व्याख्या का० 1–5 प्रथम भाग) का०–5 अनु – 1 सू 1–5 पृष्ट – 403
21. व्यास भाष्य–वेदव्यास
22. त्रिवेदी, प० पण्डित क्षेमकरणदास (भाष्यकार) (2017) अथर्ववेद, विजयकुमार गोविंदराम हासानन्द, का० 6, सू० 30, म०1 पृष्ट – 640
23. भोजवृत्ति– राजामार्तंड
24. यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः। प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ।।7.61.1 अथर्ववेद भाष्य (प० क्षेमकरणदास त्रिवेदी)
25. अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः। श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः।। 7.61.2 अथर्ववेद भाष्य (प० क्षेमकरणदास त्रिवेदी)

26. परिव्राजक, सत्यपति, (2023). योगदर्शनम्, दर्शनयोग धर्मार्थ ट्रस्ट, पृष्ट–180
27. अथर्ववेद भाष्यम् विश्वनाथ विद्यालंकार का०–6, अनु०–11,सू–109,म०–9
28. परिव्राजक, सत्यपति, (2023). योगदर्शनम्, दर्शनयोग धर्मार्थ ट्रस्ट, पृष्ट–180
29. त्रिवेदी, प० पण्डित क्षेमकरणदास (भाष्यकार) (2017) अथर्ववेद, विजयकुमार गोविंदराम हासानन्द, का०–20, सू०–51,म०–1,2,3,4 पृष्ट – 2166–2167
30. ब्रह्मलीनमुनि, स्वामी, (2074). पतंजलयोग दर्शनम्,चौखंबा प्रकाशन, पृष्ट–
31. इमं यवं अष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः। तेना ते तनव रपोऽपाचीनम प व्यये ।। अथर्वावेद – काण्डः6, सूक्तः91, मंत्रः1
32. इन्द्रस्योज्य स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णेव योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युन्जम्।। अथर्वावेद – काण्डः10 – सूक्तः5 – मंत्रः1